अमृत विचार
शब्द रंग

लगभग 200 वर्षों से गुलाब की पंखुड़ियों की उसी खुशबू के बीच खंडहर बनी वह इमारत मौजद है, जो बता रही है कि इमारत कभी बुलंद थी। उस राजधानी में जहां सुपर स्पेशलिस्ट डॉक्टरों की कमी नहीं, वहां चुनिंदा हकीम आज भी तमाम मरीजों की सांसें थाम उन्हें जिंदगी दे रहे हैं। हां ! वही हकीम जो इस्लामी स्वर्ण युग के दौरान विद्वानों की श्रेणी में आते थे। ऐसे विद्वान जो धर्म, चिकित्सा, विज्ञान और इस्लामी दर्शन के जानकार थे। उसी यूनानी चिकित्सा पद्धति को विरासत में पाने वाले कुछ हकीम अब भी हैं, जिसकी नींव 460 ईसा पूर्व ग्रीस में यूनानी दार्शनिक हिप्पोक्रेट्स ने रखी थी। इन हकीमों से मिलना है तो लखनऊ में चौक के शोर-शराबे और संकरी गलियों से होते हुए दारुलशफा तक पहुंचना होगा। यहां दशकों पुराना एक जर्जर भवन पर लगा बोर्ड दिखेगा, जिस पर लिखा है किंग्स यूनानी हॉस्पिटल, गोल दरवाजा चौक। यही है शाही यूनानी शिफाखाना। -*रिपोर्ट: शुभंकर*

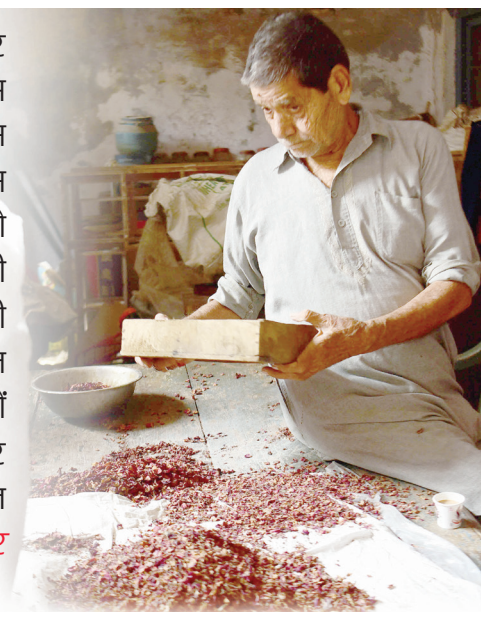

खंडहर बता रहे हैं इमारत कभी बुलंद थी

गरीबों के इलाज के लिए इस चिकित्सा इकाई की स्थापना 1832 में राजा नसरुद्दीन हैदर बहादुर ने की थी। यानी सात वर्षों के बाद इस यूनानी पद्धति के अस्पताल को स्थापित हुए पूरे 200 साल हो जाएंगे। इसी जर्जर इमारत तले आज भी न केवल मरीजों को हकीम उचित चिकित्सीय परामर्श देते हैं, बल्कि यहीं निर्मित दवाएं भी। इन्हीं यूनानी औषधियों में गुलाब की पंखुड़ियों का प्रयोग होता है, जो यहां बिखरी पड़ी दिखेंगी, जिनकी रूहानी खुशबू तनमन को तरोताजा कर देती है। दरअसल यूनानी चिकित्सा पद्धति खासकर इस्लामी देशों में फली-फूली, फिर भी अवध के नवाबों के शासनकाल में यह लखनऊ पहुंची और शहर की पहचान का अभिन्न अंग बन गई। जब अन्य लोग इससे विमुख हो गए, तब भी नवाबों ने इस प्राचीन परंपरा को संरक्षण देना जारी रखा। अभिलेखों से पता चलता है कि अंतिम नवाब, वाजिद अली शाह, शाही चिकित्सकों की एक टीम रखते थे, जो यूनानी चिकित्सा पद्धति का अभ्यास करते थे। यह वह समय था जब यूरोपीय चिकित्सा पद्धति दुनियाभर में अपनी जगह बना रही थी। यह विरासत 20 वीं सदी तक जारी रही और यूनानी चिकित्सा पद्धति जन स्वास्थ्य के लिए केंद्रीय बनी रही। लखनऊ में शाही शिफाखाना यहां के चौक इलाके के बीचों-बीच स्थापित अवध की शाही विरासत का एक प्रतीक है। एकबारगी यह कोई आम सरकारी क्लीनिक या किसी पुराने हकीम का दवाखाना लग सकता है, लेकिन जो लोग इसके इतिहास को जानते हैं, उनके लिए यह नवाबों के प्रगतिशील नजरिए का प्रतीक है। राजा नसीरुद्दीन हैदर द्वारा 1833 में स्थापित, शिफाखाना उस वक्त का आधिकारिक शाही अस्पताल था। राजा ने इसे यूनानी चिकित्सा के केंद्र के रूप में स्थापित किया था, जो यूनानी-अरबी चिकित्सा पद्धति थी, जिसने भारतीय उपमहाद्वीप में गहरी जड़ें जमा रखीं थीं। तीन प्रशिक्षित हकीमों की एक टीम जनता की सेवा करती थी। इलाज न केवल मुफ्त था, बल्कि सम्मान के साथ भी किया जाता था। सभी वर्गों के मरीजों को समान स्तर की देखभाल प्रदान की जाती थी। इस सुविधा में गहन या दीर्घकालिक उपचार की आवश्यकता वाले मरीजों के लिए भर्ती वार्ड भी शामिल थे।

अस्पताल के आसपास के बगीचे में औषधीय जड़ी-बूटियां उगाई जाती थीं और इसके अपने दवाखाना (फार्मेसी) में दुर्लभ औषधियां तैयार की जाती थीं। बाद के दिनों में लखनऊ उत्तर भारत के कलात्मक और बौद्धिक जीवन का केंद्र बनकर उभरा। अवध के नवाबों ने इस बदलाव को अपनाया और कवियों, कलाकारों, संगीतकारों और हकीमों को आमंत्रित किया। शिफाखाना शीघ्र ही चिकित्सा शिक्षा का केंद्र बन गया। यूनानी चिकित्सा के इच्छुक चिकित्सक यहां वरिष्ठ हकीमों के अधीन प्रशिक्षण लेते थे और निदान, औषध विज्ञान और समग्र चिकित्सा में अनुभव प्राप्त करते थे। निदान में नाड़ी-परीक्षण, नेत्र परीक्षण और सावधानीपूर्वक पूछताछ शामिल थी। उपचार में जोशांदा (जड़ी-बूटियों का काढ़ा), कुर्स (गोलियां) और अर्क (आसुत) शामिल थे, जो अक्सर रोगी की शारीरिक संरचना या मिजाज के अनुसार विशेष रूप से तैयार किए जाते थे। समय के साथ अस्पताल का स्टाफ कम होता गया और इसके समृद्ध अभिलेखागार और फार्मेसी की उपेक्षा की गई। फिर भी यह कभी बंद नहीं हुआ। वर्षों के राजनीतिक उथल-पुथल, सत्ता परिवर्तन और स्वास्थ्य सेवा के बदलते रुझानों के बावजूद, शाही शिफाखाना चुपचाप लोगों की सेवा करता रहा।

इमारत पर बदलते दौर के निशान हावी

आज इमारत पर बदले दौर के निशान हावी हैं। यहां की टूटी दीवारें और जंग खा चुका साइनबोर्ड संस्थान की ऐतिहासिक महत्ता की कहानी बयां करता है। अंदर चुनिंदा हकीम आज भी मात्र तीस रुपये के पर्चे पर परामर्श के साथ औषधियां भी देते हैं। मौके पर पहुंचिए तो हकीम सय्यद जैनुअल हसन और हकीम सय्यद अहमद मेंहदी यहां बैठे मिलेंगे। एक हकीम-ए-अव्वल हैं तो दूसरे हकीम-ए-दोयम यानी सीनियर और जूनियर हकीम साहब। इनके एक सहायक इस्लाम भी यहां दवाओं के वितरण का काम करते हैं। हालांकि यहां आने वाले मरीज कम हैं, फिर भी कई मरीज पुरानी बीमारियों के इलाज के लिए आते हैं। मर्ज के लिहाज से इन हकीमों द्वारा बताई गईं सभी दवाइयां एक विशेषज्ञ टीम द्वारा तैयार की जाती हैं, जो दशकों से इस यूनिट से जुड़े हुए हैं। सभी औषधियां गुलाब, ताजी जड़ी-बूटियों और प्राकृतिक औषधियों से तैयार होतीं है, बाजार में मिलने वाली कोई भी रेडीमेड दवा नहीं प्रयोग नहीं होती।

संस्मरण

प्राचार्य जी के शब्द

बात उन दिनों की है जब मैं कक्षा-10 का विद्यार्थी था। डॉ. बीएन शर्मा जो कि सेना से सेवानिवृत्त थे और हमारे प्राचार्य थे। उनकी छवि एक अनुशासनप्रिय और कड़क प्राचार्य की थी। जब वह अपने हाथ में रूल लेकर पूरे कॉलेज के राउंड पर होते, तो कैंपस में पिन ड्रॉप साइलेंस छा जाता। बच्चे तो बच्चे, आसपास के पेड़ों पर बैठी चिड़ियां भी चहचहाना बंदकर खामोश हो जातीं। मेधावी छात्रों से प्राचार्य जी को सहज लगाव था, जो भी बच्चा उन्हें मन लगाकर पढ़ने वाला और कुशाग्र बुद्धि दिख जाता, वह उनका लाडला हो जाता। फिर वह हर तरह से उसके बौद्धिक और मानसिक विकास का न केवल प्रयास करते, वरन उसे विभिन्न प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए प्रेरित भी करते। उनका ऐसा ही एक लाड़ला विद्यार्थी मैं भी था।

गौरव वाजपेयी 'स्वप्निल'
साहित्यकार

लेखन में मुझ पर शुरुआत से ही मां सरस्वती की बड़ी कृपा रही थी, किंतु मेरा स्वभाव उस समय तक बड़ा अंतर्मुखी था। सार्वजनिक मंच से बोलने में मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती थी। कितनी भी अच्छी तैयारी क्यों न की हो, लोगों की अपनी ओर केन्द्रित निगाहें मुझे असहज कर देती थीं। मुझे लगता है शुरुआत में ऐसा सभी के साथ होता है। उस समय खाड़ी युद्ध चल रहा था। प्राचार्य जी ने इसी विषय पर एक जिला स्तरीय वाद-विवाद प्रतियोगिता का आयोजन कराने का निर्णय लिया। उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हें इस प्रतियोगिता में कॉलेज का प्रतिनिधित्व करना है। मैंने कहा-"सर! मैं भाषण और वाद-विवाद आदि में उतना अच्छा नहीं हूं।" उन्होंने एक न सुनी और तैयारी करने को कहा। मैंने भी हिम्मत करके विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का अनुशीलन कर मैटर कलेक्ट किया, उसे अपने शब्दों में बिंदुवार लिखा और प्राचार्य जी को दिखाया। पढ़कर वह बेहद खुश हुए और आशा जताई कि प्रथम पुरस्कार विजेता मैं ही होऊंगा। मैंने भी प्रतियोगिता से पहले रोज उस मैटर को कई बार दिमाग में बैठाते हुए दोहराया। प्रतियोगिता का दिन आया। जनपद के लगभग सभी विद्यालयों के प्रतिभागी आए हुए थे। बढ़िया स्टेज सजाया गया था। सभी में अत्यंत उत्साह था। मैं थोड़ा नर्वस था, किंतु उत्साहित था। सभी प्रतिभागी पूरे जोशोखरोश के साथ अपनी प्रस्तुति दे रहे थे। सात-आठ प्रतिभागियों के बाद मेरा नाम पुकारा गया। मैं मां सरस्वती का स्मरण करते हुए स्टेज पर पहुंचा। मैंने मां सरस्वती को प्रणाम करते हुए कार्यक्रम के अध्यक्ष, मुख्य अतिथि आदि को अभिवादन करते हुए बोलना शुरू किया। जैसे ही मेरी नजर सामने बैठे हुए श्रोताओं पर गई, मैं असहज महसूस करने लगा और मेरे मुंह से आवाज निकलनी बंद हो गई। ऐसा लग रहा था जैसे मुझे कुछ भी याद न रहा हो। प्राचार्य जी मेरा उत्साह बढ़ाते हुए बोले-"बहुत अच्छी शुरुआत है बेटा! आगे जारी रखो।" पर मेरी कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। मैं रुआंसा सा हो गया। रुंधे गले से सॉरी कहकर मैं स्टेज से नीचे उतर आया। प्राचार्य जी ने स्टेज पर माइक से कहा-"हमारे विद्यालय का सबसे मेधावी छात्र है, बहुत अच्छा लिखता है। भाषण की कला का वरदान मां सरस्वती सभी को नहीं देतीं।" उनके ये शब्द मेरे बालमन में तीर की तरह जा लगे थे। घर आकर मैं बहुत रोया। अपनी पराजय का एहसास मुझे बार-बार हो रहा था और प्राचार्य जी के शब्द मेरे कानों में बार-बार गूंज रहे थे। मैं समझ रहा था कि उन्हें भी मेरे स्टेज पर न बोल पाने से बेहद तकलीफ हुई होगी। उसी वेदना में ये शब्द उनके श्रीमुख से निकले थे। अगले दिन विद्यालय में मैं उनके कक्ष में जाकर उनसे मिला और क्षमा मांगी। उन्होंने कहा-"गौरव! दुःख इस बात का है कि तुमने इतनी अच्छी तैयारी की थी, किंतु आत्मविश्वास के अभाव में तुम घबरा गए। अरे! जब कभी भी भीड़ के सामने बोलो, कभी यह मत सोचो कि सामने सब विद्वान बैठे हैं। हमेशा यह सोचो कि सामने वाले को कुछ नहीं पता और तुम इस विषय को सबसे अच्छी तरह जानते हो। कभी घबराहट नहीं होगी।" उनके वे शब्द उसी समय मैंने गांठ बांध लिए। मैंने उसी समय संकल्प लिया कि भाषण कला में अभ्यास करते हुए पारंगत होना है। उसके बाद मैंने कभी भी सार्वजनिक मंच से बोलने का कोई भी मौका नहीं छोड़ा। धीरे-धीरे स्टेज फियर बिल्कुल गायब हो गया। प्राचार्य जी के शब्द मेरे लिए वरदान सिद्ध हुए और उनका सुझाव मेरे जीवन का मागदर्शक सिद्धांत।

अमिताभ बच्चन के पहले गुरु फ्रैंक ठाकुर दास

दिल्ली विश्वविद्यालय के किरोड़ी मल कॉलेज (केएमसी) के विशाल परिसर में कदम रखते ही फ्रैंक ठाकुर दास सभागार नजर आता है, जो उस महान शिक्षक को श्रद्धांजलि है, जिनका रंगमंच और शिक्षा के प्रति जुनून बेजोड़ था। यदि उनकी प्रेरणा न होती, तो शायद एक लंबा-दुबला बीएससी का छात्र कभी मंच पर न आता और दुनिया का अमिताभ बच्चन जैसे आइकन से परिचय नहीं होता।

- अमिताभ बच्चन 1959 से 1962 तक केएमसी में छात्र थे, जब उनके पिता, प्रख्यात हिंदी विद्वान डॉ. हरिवंश राय बच्चन, विदेश मंत्रालय में हिंदी अधिकारी थे। तीन वर्षों तक केएमसी हॉस्टल का कमरा नंबर 66 उनका घर रहा। यहीं उनकी मुलाकात प्रो. फ्रैंक ठाकुर दास से हुई, जो पंजाब के गुरदासपुर के रहने वाले थे, जिन्होंने उनकी जिंदगी को नया मोड़ दिया। फ्रैंक ठाकुर दास बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। पेशे से राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर, वह केएमसी की ड्रामा और डिबेटिंग सोसाइटी के प्राण थे। इसके अलावा वह कुश्ती, फुटबॉल और अन्य खेलों के शौकीन थे। उनका दर्शन सरल, लेकिन गहरा था: छात्रों को पढ़ाई के साथ-साथ सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों में उत्कृष्टता हासिल करने के लिए प्रोत्साहित करना। लंबे कद और आकर्षक व्यक्तित्व वाले प्रो. फ्रैंक अपने छात्रों, पूर्व व वर्तमान के लिए हमेशा उपलब्ध रहते थे। उनका जीवन छात्रों की प्रगति और सफलता के इर्द-गिर्द घूमता था।
- अमिताभ बच्चन ने 2017 के एक साक्षात्कार में प्रो. फ्रैंक ठाकुर दास से अपनी पहली मुलाकात को याद करते हुए कहा था- "एक दिन प्रो. फ्रैंक ने मुझसे कहा कि मुझे तुरंत कॉलेज की ड्रामा सोसाइटी में शामिल होना चाहिए"। उस पहली मुलाकात से ही वह मेरे गुरु बन गए। उनके मार्गदर्शन में मैंने रंगमंच की बारीकियां सीखीं। जैसे मंच पर आवाज का उतार-चढ़ाव और अभिनय में भावनाओं का क्या महत्व होता है।"
- प्रो. फ्रैंक स्वयं एक उत्कृष्ट अभिनेता और निर्देशक थे, जिन्होंने अमिताभ को पूरे समर्पण से मार्गदर्शन दिया। फ्रैंक के मार्गदर्शन में अमिताभ ने रंगमंच में उत्साह के साथ हिस्सा लिया और हिंदी व अंग्रेजी नाटकों में अभिनय किया। केएमसी ड्रामा सोसाइटी एक शक्तिशाली मंच बन गई, जो न केवल दिल्ली विश्वविद्यालय में, बल्कि पूरे शहर में नाटकों का मंचन करती थी। अमिताभ इस जीवंत रंगमंच समुदाय का अभिन्न हिस्सा थे। प्रो. फ्रैंक ने तो उन्हें मिरांडा हाउस, एक महिला कॉलेज में एकल नाटक के लिए भी सिफारिश की थी, जिसे अमिताभ मुस्कुराते हुए याद करते हैं।
- फ्रैंक ठाकुर दास का प्रभाव केवल अमिताभ तक सीमित नहीं था। उन्होंने सतीश कौशिक, कुलभूषण खरबंदा और कबीर खान जैसे केएमसी के पूर्व छात्रों की पीढ़ी को प्रेरित किया, जिन्होंने अभिनय और फिल्म निर्माण में अपनी पहचान बनाई। उनकी अपने छात्रों के प्रति प्रतिबद्धता असीम थी। वह जरूरत पड़ने पर उनकी आर्थिक मदद करते और कक्षाओं के बाद घंटों नाटकों का अभ्यास करवाते। एक कार्यनिष्ठ और बेहतरीन पंजाबी गायक, फ्रैंक ने केएमसी की डिबेटिंग और संगीत सोसाइटी को भी संवारा, जिससे कॉलेज की सांस्कृतिक विरासत पर अमिट छाप छोड़ी।
- दिवंगत अभिनेता सतीश कौशिक ने एक बार इस लेखक से कहा था, "1970 के दशक में जब मैं केएमसी में आया, फ्रैंक सर एक विशाल व्यक्तित्व थे। यह जानकर मैं चकित था कि उन्होंने अमिताभ बच्चन को पढ़ाया था। वह अपनी उपलब्धियों पर कभी घमंड नहीं करते थे। यही उनकी खासियत थी। उन्होंने मुझे रंगमंच की बारीकियां उसी समर्पण से सिखाईं, जो वह सभी को देते थे।"
- केएमसी समुदाय को फ्रैंक ठाकुर दास के योगदान पर गर्व है। 2019 में अमिताभ बच्चन, सतीश कौशिक और कबीर खान ने फ्रैंक ठाकुर दास सभागार के जीर्णोद्धार के लिए धन संग्रह कार्यक्रम में हिस्सा लिया, जो खराब हालत में था। अमिताभ ने 51 लाख रुपये का दान दिया, ताकि सभागार का भव्य पुनर्निर्माण हो सके। फ्रैंक के अन्य छात्रों ने भी योगदान दिया, जो उनके प्रति सम्मान को दर्शाता है।

विवेक शुक्ला
वरिष्ठ पत्रकार